

## तीन दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी की संक्षिप्त रिपोर्ट

"उत्तर भारत में दलित आंदोलन : सिद्धांत, व्यवहार एवं चुनौतियां" संगोष्ठी की रिपोर्ट

दिनांक: 26-28 नवम्बर, 2018.

स्थान: सेमिनार हाल, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला।

आयोजक: भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, राष्ट्रपति निवास, शिमला।

संगोष्ठी संयोजक: डॉ. अजय कुमार, फ़ेलो, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला।

भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, राष्ट्रपति निवास, शिमला में "उत्तर भारत में दलित आंदोलन : सिद्धांत, व्यवहार एवं चुनौतियां" विषयक तीन दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आरंभ संस्थान की परंपरा के अनुसार दीप प्रज्वलन के साथ किया गया। इसके बाद इस संगोष्ठी में आए हुए विद्वानों और प्रतिभागियों का स्वागत संस्थान के अध्येता प्रोफेसर डमरूधर नाथ ने किया।

इस संगोष्ठी के संयोजक और भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला के फ़ेलो डॉक्टर अजय कुमार द्वारा संगोष्ठी का परिचय कराया गया। अपने परिचय वक्तव्य में उन्होंने बताया कि इस संगोष्ठी के तीन प्रमुख लक्ष्य हैं—दलित प्रश्न से जुड़े मुद्दे को समाजशास्त्रीय ढंग से देखना, दलितों के जीवन में आ रही कठिनाइयों और चुनौतियों की पहचान करना और समाज तथा सरकार को लोगों के जीवन को बेहतर बनाने के उपाय सुझाना।

तीन दिवसीय आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी की संकल्पना

भारत में दलित आंदोलन की अवधारणा का आरम्भ गुलामी से मुक्ति की आंकाक्षाओं से हुआ है। इस संदर्भ में दलित आंदोलन ने न केवल दलित मुक्ति का प्रस्ताव रखा बल्कि उत्पीड़न और दलन की पीड़ा के शिकार आमजनों की मुक्ति की राह भी खोली है। राजनैतिक चेतना के उद्भव से पहले भारत में इस मुक्ति

संघर्ष की परंपरा सामाजिक और सांस्कृतिक आंदोलनों के रूप में ही दिखाई देती है। लेकिन दलित मुक्ति के साथ-साथ व्यापक सामाजिक मुक्ति के लिए राजनीतिक चेतना का उद्भव आधुनिक भारत में ही संभव हुआ। यह दलित राजनीतिक चेतना जहाँ एक तरफ इतिहास और संस्कृति से निकली है वहीं यह हमारे समय के सामान्य नजरिये से ऊर्जा ग्रहण करती है। इसे हम बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के लेखन और उनकी राजनीति में देख सकते हैं।

ब्रिटिश राज के विरुद्ध भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान आज़ाद भारत में किसको कितनी आजादी मिली थी- के मुद्दों पर चल रही बहसों ने आधुनिक दलित आंदोलन की पृष्ठभूमि तैयार की जो वास्तव में कई विभिन्न आंदोलनों का समुच्चय है। जहाँ गाँधीवादी संघर्षों द्वारा दलितों की समस्याओं को सिर्फ समाज सुधार और कल्याण कार्यक्रमों तक सीमित रखा गया वहीं मार्क्सवादी विद्वानों ने अपने आपको वर्ग के प्रश्न तक सीमित रखा। इस सबके बीच, राष्ट्र और वर्ग से निकलकर दलित आंदोलन ने जाति आधारित अधीनस्थीकरण के बजाय अपने को मुक्ति के प्रश्न से जोड़ा। उत्तर औपनिवेशिक युग में इस पर काफी जोर दिया जा रहा है। वास्तव में दलित आंदोलन सत्ता हथियाने, किसी प्रांत पर कब्जा करने या किसी राज्य के विस्तार का आंदोलन नहीं है। यह दलित समाज द्वारा अपनी गरिमा की रक्षा, सामाजिक शोषण और उत्पीड़न से छुटकारा पाने का आंदोलन है।

दलित आंदोलनों ने अपने संघर्षों के माध्यम से जाति आधारित शोषण को चुनौती दी है। दलितों के संघर्ष ने उन्हें मुख्यधारा के राजनीतिक शक्ति संरचना तंत्र में राह बनाने की ओर अग्रसर कर दिया है। उन्होंने परंपरागत शासक वर्गों पर सफलतापूर्वक दबाव भी बनाया है। इस कारण से, इन आंदोलनों और संघर्षों ने एकेडमिक क्षेत्र के बुद्धिजीवियों के एक हिस्से को इसके अध्ययन व समीक्षा हेतु बाध्य किया है। मुख्य रूप से दलित संघर्षों को केंद्र में रखने वाले दलित विमर्श ने समाज विज्ञान और मानविकी के सभी विषयों को प्रभावित किया है।

और बिल्कुल इसी समय, एक नवीन प्रकार की विद्वत्ता ने यह भी रेखांकित किया है कि पर्याप्त प्रगति के बावजूद दलित मुख्यधारा की राजनीति में दबाव समूह बनकर रह गए हैं। आमूलचूल सामाजिक परिवर्तन की धार कुंद पड़ती जा रही है। आज एक तरफ तो दलित आंदोलन में आंतरिक तनाव हैं तो दूसरी तरफ बाहरी चुनौतियाँ भी हैं। अन्य समस्याओं के साथ समाज में जाति को ज्यादा महत्व मिलना, लोकतांत्रिक और राज्य निर्देशित नीतियों की समस्या और वैश्वीकरण पूरे परिदृश्य को और भी जटिल बना

रहे हैं। उत्तर अम्बेडकरवादी समकालीन दलित आंदोलन आगे तो गया है लेकिन वह नवीन दुविधाओं में फँस गया है।

इस परिप्रेक्ष्य में आयोजित हुई यह संगोष्ठी दलित आंदोलन से संबंधित नवीन शोधों और विचारों को एक साथ लाने का प्रयास थी। विषय के विस्तार को देखते हुए इस संगोष्ठी ने अपने आपको उत्तर भारत के दलित आंदोलन तक सीमित रखा। लेकिन इसका आशय यह नहीं था कि इसने देश के दूसरे हिस्सों से इसके संबन्ध को भुला दिया हो। संगोष्ठी में कुछ ऐसे पत्रों भी सम्मिलित किए गए जो उत्तर भारत और दक्षिण भारत में हो रहे दलित आंदोलनों का तुलनात्मक परिदृश्य प्रस्तुत करते हैं।

इस तरह से आयोजित हुई संगोष्ठी में ऐसे पत्र जो एक दूसरे से संबद्ध रहे हैं, इन उपविषयों के अंतर्गत संभावित शोधपत्र प्रतिभागियों द्वारा भेजे गए:

- दलित आंदोलनों से हम क्या समझ सकते हैं?
- उत्तर भारत में दलित आंदोलन का अब तक का क्या इतिहास रहा है?
- यह आंदोलन किन सिद्धांतों/विचारधाराओं/दृष्टिकोणों पर आधारित रहे हैं और इन्होंने दलित आंदोलन को कैसे रूप दिया और उसे आगे बढ़ाया है?
- उनका वास्तविक अनुभव क्या रहा है?
- उन्होंने किन समस्याओं का सामना किया है और उससे किस प्रकार मोलभाव किया है? और इससे उन्हें किस प्रकार की सफलताएँ मिली हैं?
- मुख्यधारा की राजनीति से दलित आंदोलन और दलित पत्र का संबंध कैसा रहा है?
- दलित आंदोलन की विविधता का क्या अर्थ और परिणाम रहा है?
- इतिहास और अस्मिता, सामाजिक परिवर्तन, लोकतंत्र और नागरिकता, राष्ट्र और राज्य, उदारीकरण और सांप्रदायिकता के मुद्दों से यह आंदोलन कैसे निपटते हैं?
- समकालीन दलित आंदोलन के विरोधाभास क्या हैं?
- उत्तर भारत के दलित आंदोलन को देश के अन्य भागों के दलित आंदोलन के साथ हम ठीक-ठीक कहाँ रख सकते हैं?

- जेंडर, वर्ग, अन्य पिछड़े वर्गों और आदिवासी जनों के प्रश्नों के साथ यह कैसे व्यवहार करता है?
- दलित प्रश्न और आंदोलन से समाज विज्ञान किस सीमा तक और किस तरीके से निपटता है?
- दलित अध्ययनों द्वारा किए गए हस्तक्षेप की प्रकृति क्या रही है? क्या इसे अपने आप में एक आंदोलन कहा जा सकता है?
- दलित प्रश्न और आंदोलनों को सांस्कृतिक व्यवहारों में किस प्रकार प्रस्तुत किया गया है?

उपर्युक्त उप विषयों पर शोधपत्र आमंत्रित किए गए थे। इस गोष्ठी की संरचना और सत्रों को इन्हीं प्रश्नों के आलोक में संयोजित किया गया। जो इस प्रकार से हैं :

उत्तर भारत के संदर्भ में

- दलित आंदोलनों का अध्ययन
- दलित आंदोलनों का इतिहास
- दलित आंदोलन में, और दलित आंदोलन का विचार चक्र
- दलित आंदोलन का व्यवहार, अनुभव और उसका प्रभाव
- दलित आंदोलनों की समस्याएँ, चुनौतियाँ और संभावनाएँ
- दलित आंदोलन में जेंडर, वर्ग, अन्य पिछड़े वर्गों और आदिवासी जनों के प्रश्न
- संस्कृति एवं साहित्य में दलित आंदोलन
- दलित आंदोलनों का देश के अन्य हिस्सों के आंदोलनों से संबंध और तुलनाएँ

अजय कुमार ने यह भी बताया कि संगोष्ठी के विषय को पहले अखिल भारतीय स्तर पर करने का विचार था यानी पूरे भारत में दलित आंदोलन के सिद्धांतों, अनुभवों और चुनौतियों को लेकर एक राष्ट्रीय विमर्श की योजना थी। फिर इसे उत्तर भारत तक सीमित किया गया, जिससे गहन रूप से इस पर विचार हो सके। इस विषय के उस्तादों को बुलाने में कोई दिक्कत नहीं हुई लेकिन सबसे बड़ी चुनौती नौजवान स्कालर्स के एबस्ट्रैक्ट में से लगभग 15 लोगों को बुलाना था। और यहीं आकर इस सेमिनार का विषय थोड़ा

अद्भुत ढंग से खुला। उत्तर भारत में बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश, गुजरात, छत्तीसगढ़, झारखंड, में दलित आंदोलन पिछले तीन दशकों से जबर्दस्त रूप से मौजूद हैं। इस पर सैद्धांतिक शोध अमेरिका, यूरोप में हो रहा है। इसके साथ ही साथ हैदराबाद, जे. एन.यू. में हो रहा है। दलित आंदोलन के अनुभवों पर कुछ बेहतरीन शोध गिड्स लखनऊ, जी.बी. पंत सामाजिक विज्ञान संस्थान, इलाहाबाद में हो रहे हैं। अजय कुमार ने यह बात भी साझा की जो इस मुद्दे पर चुनौतियाँ हैं, उन पर शोध की भारी कमी है। यह संगोष्ठी उसी दिशा में एक प्रयास है कि इस कमी को दूरकर एक न्याय आधारित, करुणा व बंधु भाव से भरे हुए लोकतान्त्रिक भारत का निर्माण करने की अकादमिक परियोजनाओं को चिन्हित किया जाए, उस पर बात हो, लिखा जाए, तीन दिन की इस वैचारिक बहस-मुवाहिसे के बाद उत्पादित इस ज्ञान को समाज को वापस किया जाए, जिसका सपना बाबासाहेब अंबेडकर ने देखा था।

इस संगोष्ठी का उद्घाटन हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय के कुलपति प्रोफेसर सिकंदर कुमार द्वारा किया गया। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के समाजशास्त्र विभाग के चेयरपर्सन/विभागाध्यक्ष प्रोफेसर विवेक कुमार द्वारा इस संगोष्ठी का बीज वक्तव्य दिया गया। गोबिंद बल्लभ पन्त सामाजिक विज्ञान संस्थान के निदेशक एवं प्रसिद्ध समाज विज्ञानी बंदी नारायण द्वारा समापन वक्तव्य दिया गया। समाजशास्त्री प्रोफेसर आनंद कुमार ने इस संगोष्ठी में विशेष व्याख्यान दिया।

प्रोफेसर सिकंदर कुमार ने कहा कि सबको साथ लेकर ही एक समतापूर्ण समाज बनाया जा सकता है। लेकिन इसके पहले मनुष्य निर्मित अत्याचार, अपमान को मिटाना होगा। उन्होंने आगे कहा कि हमें समाज को समतामूलक समाज के निर्माण के लिए जाति व्यवस्था के रोग को मिटाना होगा, भेदभाव को खत्म करना होगा। बुखार होने पर सब लोग पैरासीटॉमोल खाते हैं। इसका मतलब है कि सबका खून एक जैसा है, तो फिर मानवीय जीवन में भेदभाव भी नहीं होना चाहिए। उत्पीड़न के गहन पक्षों को समझने और जानने के लिए सैद्धांतिकी के साथ ही साथ व्यावहारिक सच्चाइयों और चुनौतियों को भी अकादमिक विमर्श में स्थान देना पड़ेगा।

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के समाजशास्त्र विभाग के विभागाध्यक्ष प्रोफेसर विवेक कुमार ने 'सेड्यूलड कास्ट (दलित) मूवमेंट इन नॉर्थ इंडिया' विषय पर इस सेमिनार का बीज वक्तव्य देते हुए कहा कि

समाजशास्त्र को दलित समाज की सच्चाइयों को अनुभव आधारित होना है, उसे और नयी प्रविधियां अपनानी है। उन्होंने स्पष्ट किया कि दलित आंदोलन के आने से जातिवाद नहीं बढ़ा है बल्कि इसके आने से राजनीति में वे लोग शामिल हुए हैं जो इसमें पीछे छूट गए हैं। इसके साथ ही साथ उन्होंने इस बात पर भी बल दिया कि सामाजिक आंदोलनों को देखते समय उनका अध्ययन करते समय शोध की नई ठोस और वस्तुगत सच्चाइयों को ध्यान में रखना होगा।

विवेक कुमार ने कहा कि उत्तर भारत तथा देश के सबसे बड़े राज्य उत्तर प्रदेश के सामाजिक-राजनैतिक क्षितिज पर दलितों में आत्मनिर्भर राजनैतिक चेतना अपने विकसित तथा संगठित रूप में सन् 1984 में बहुजन समाज पार्टी (बसपा) के रूप में फिर प्रकट हुई। बसपा के विकास के साथ-साथ आज यह नई ऊंचाइयों को प्राप्त करने का प्रयास कर रही है, परन्तु इस राजनैतिक चेतना के पुनः उत्थान के पहले मान्यवर कांशीराम (बामसेफ तथा बसपा कैडर श्री कांशीराम को मान्यवर के नाम से पुकारते हैं।) ने अपने सहयोगियों के साथ 'बामसेफ' 6 दिसम्बर 1978 को दिल्ली में स्थापना) तथा 1981 में 'डी0एस0 फोर' (दलित, शोषित, समाज, संघर्ष समिति) के माध्यम से सामाजिक चेतना को और उभारा। 1984 में यह सामाजिक आंदोलन बसपा के गठन से राजनीति में बदल गया, जिससे दलितों में नवीन राजनैतिक चेतना का संचार हुआ, इसी नई उभरती चेतना के कारण बहुजन समाज पार्टी के सहारे अनेक इतिहासों को जन्म दिया, जैसे- भारतीय समाज में एक दलित महिला का मुख्यमंत्री बनना आदि। इसी चेतना ने दलित समुदाय हेतु समाज में नवीन प्रतीकों को भी स्थापित किया है, आज यह नवीन चेतना दलितों में सामुदायिक भावना, आत्मविश्वास तथा पहचान की शक्ति का संचार करने में सफल हुई है। विवेक कुमार ने यह समझाने की कोशिश की कि पूर्व अस्पृश्य/अनुसूचित जाति/ दलित आंदोलन ने नए राजनीतिक नेतृत्व, राजनीतिक मुद्दों, सामाजिक गठजोड़ और कार्यक्रम और नीतियों को नए तरीके से विकसित किया है। इसके अलावा दलित आंदोलन की विचारधारा, दलित आंदोलन का नेतृत्व, इसकी नीतियाँ और कार्यक्रम किस तरह से भारतीय लोकतंत्र और भारतीय राष्ट्र को मजबूत किया है। जिससे एक समावेशी भारत का सपना पूरा हो सके।

संगोष्ठी के प्रथम सत्र 'आईडियोलोजी एण्ड पॉलिटिकल फॉर्म्स' की सत्र अध्यक्षता और संचालन विकासशील समाज विज्ञान पीठ, नई दिल्ली के डाक्टर निशिकांत कोलगे द्वारा की गई। इस सत्र में दो

प्रस्तुतीकरण सम्पन्न हुए। प्रथम प्रस्तुतीकरण लखनऊ स्थित बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर केंद्रीय विश्वविद्यालय के समाजशास्त्री प्रोफेसर बी. बी. मलिक ने 'दलित मूवमेंट इन उत्तर प्रदेश एट्रोसिटीज एसरसन एंड एनहिलेशन' नामक अपनी प्रस्तुति के माध्यम से सामाजिक आंदोलन को जन्म देने वाली वास्तविकताओं और लक्ष्यों को परिभाषित किया। साथ ही साथ उत्तर प्रदेश में बसपा के उभार और उसके समक्ष उत्तम समकालीन चुनौतियों के साथ ही साथ दलित आंदोलन के आंतरिक अंतर्विरोध और समकालीन दलित नेतृत्व की रणनीतिक चुनौतियों और संभानावओं पर भी चर्चा की खासकर उत्तर प्रदेश में बहुजन समाज पार्टी के की सांगठनिक विफलताओं और उत्तर प्रदेश के पिछले विधानसभा और लोकसभा चुनावों की राजनैतिक चुनावी हार पर।

बलिया, उत्तर प्रदेश के सतीशचन्द्र कालेज में इतिहास के सहायक प्राध्यापक युवा इतिहासकार डाक्टर शुभनीत कौशिक ने 'शिक्षा, संघर्ष और संगठन : मुक्तिकामी शिक्षा का विचार और दलित आन्दोलन' शीर्षक अपने पन्नें में ज्योतिबा फुले और डाक्टर अम्बेडकर के शिक्षा संबन्धित विचार, संघर्ष और उसकी विरासत पर बात की एवं संगठन और संघर्ष के लिए शिक्षा की जरूरत को रेखांकित किया। 1942. बी.आर. अंबेडकर ने 'शिक्षा, संघर्ष और संगठन' का नारा देते हुए कहा था कि शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थियों को इसके लिए भी तैयार करना है कि वे खुद पर प्रभुत्वशाली संस्कृति द्वारा थोपी जा रही शिक्षण-व्यवस्था का प्रतिरोध कर सकें। डॉ. अंबेडकर और ज्योतिबा फुले ने दलित समुदाय के शोषण और दमन के विरुद्ध चल रहे संघर्ष में शिक्षा की मुख्य भूमिका को बार-बार रेखांकित किया है। इस प्रस्तुतीकरण के माध्यम से शुभनीत कौशिक ने इन विचारकों के लेखन में और दलित आंदोलनों में अभिव्यक्त होने वाले शिक्षा संबंधी विचारों का पड़ताल करने का एक प्रयास किया। मुक्तिदायी शिक्षा और संवाद की जरूरत पर बल देते हुए ज्योतिबा फुले और डॉ. अंबेडकर दोनों ने ही संवादपरक शिक्षण-पद्धति का पुरजोर समर्थन किया था। उनका मानना था कि हमें तार्किक ढंग से संस्कृति की शिक्षण पद्धति (पेडागॉजी ऑफ कल्चर) पर सोचना होगा, ताकि हम यह जान सकें कि ज्ञान के उत्पादन व उसके प्रसार के जरिये, सत्ता कैसे काम करती है। शिक्षा के संदर्भ में, डॉ. अंबेडकर और ज्योतिबा फुले के विचारों का विश्लेषण करते हुए इन्हें जॉन डिवी, पॉलो फ्रेरे विचारों से भी जोड़कर देखने की कोशिश इस प्रस्तुतीकरण में शुभनीत कौशिक ने की। इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि पॉलो फ्रेरा ने अपनी क्रांतिकारी किताब पेडागॉजी ऑफ ऑप्रेस्ड में संवाद को एक मानवीय परिघटना के रूप में देखा था। संवाद के जिन दो आयामों पर उनका खास ज़ोर था, वे हैं : चिंतन और कर्म। शिक्षाविद जॉन डिवी

को इस संदर्भ से जोड़कर देखने का महत्त्व इसलिए भी बढ़ जाता है कि शिक्षा और लोकतंत्र पर लिखी गई जॉन डिवी की किताब डेमोक्रेसी एंड एजुकेशन (1916), डॉ. अंबेडकर के कोलंबिया विश्वविद्यालय में रहते हुए ही छपी थी। इस प्रस्तुतीकरण के माध्यम से शुभनीत ने विश्वविद्यालयों और उच्च शिक्षा में दलितों की उपस्थिति, उनकी भागीदारी और उनके समक्ष आने वाली चुनौतियों और उनके संघर्षों, और उच्च शिक्षा तक दलित छात्रों की पहुँच के प्रश्न को भी उठाने की कोशिश भी की।

संगोष्ठी के द्वितीय सत्र 'पोलिटिकल इकॉनमी ऑफ इमेन्सिपेशन' सत्र की अध्यक्षता और संचालन प्रोफेसर बी. बी. मलिक द्वारा की गई। इस सत्र में तीन प्रस्तुतीकरण सम्पन्न हुए। प्रथम प्रस्तुतीकरण गिरि विकास अध्ययन संस्थान लखनऊ के समाज विज्ञानी डॉ. प्रशांत त्रिवेदी ने 'एमेर्जिंग डिलेमाज़ ऑफ दलित मूवमेंट द क्वेश्चन ऑफ दलित बर्जुआजीज' विषय पर किया। उन्होंने दलित समुदाय और दलित आंदोलन के अंदर उभर रहे नए मध्य वर्ग के साथ ही साथ दलित बर्जुआजी की बात की। इसके साथ ही दलित मुक्ति और दलित आंदोलन को नव उदारवादी आर्थिक संदर्भों के विभिन्न परिप्रेक्ष्यों की बात भी कही। आज की दलित समस्याओं को नव उदारवाद, निजीकरण एवं वैश्वीकरण की नीतियों के साथ भी देखना होगा। इस बहस में एक पक्ष यह तर्क दे रहा है कि पूँजीवाद पूर्व-पूँजीवादी रिश्तों को प्रतिस्थापित करता है। भारतीय परिस्थितियों में यह रिश्ते जाति आधारित रहे हैं। इस विमर्श में राज्य को भी जाति संस्था के रूप में देखा जाता है। इसलिए यह तर्क मानता है कि भूमंडलीकरण के दौर में पूँजीवाद के आगे बढ़ने से दलितों को जाति और जातिवादी राज्य के शोषण से मुक्ति मिलेगी। इस बहस में दूसरा पक्ष कहता है कि पूँजीवाद का एक ही प्रतिरूप नहीं होता। कल्याणकारी राज्य भी पूँजीवाद का एक प्रतिरूप था जिसके पास एफरमेटिव एक्शन का एजेंडा था। इसके पीछे हटने के दलितों के लिए गंभीर परिणाम हो सकते हैं। यह पक्ष इस धारणा को चुनौती देता है कि राज्य दलितों के साथ भेदभाव करता है जबकि बाजार भेदभाव मुक्त होता है।

इस सत्र के दूसरे प्रस्तुतीकरण में जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से भारतीय भाषा विभाग के प्रोफेसर राजेश पासवान ने 'दलित समाज का आर्थिक आन्दोलन' दलित उद्यमशीलता की बात की। उन्होंने दलित उद्यमशीलता के विकास, दलित औद्योगिक समुदाय के निर्माण के बारे में बताया। उन्होंने रेखांकित किया कि किस प्रकार यह उद्यमशीलता और औद्योगिक भाव दलित राजनीति और आंदोलन के लिए जरूरी हैं। 1991 से उदारीकरण की शुरुआत के बाद भूमंडलीकरण, उदारीकरण, एवं निजीकरण (एल.पी.जी.) के विरुद्ध पूरा भारतीय बौद्धिक समाज में एक नकारात्मक विमर्श चल रहा है। बौद्धिक समाज एल. पी. जी. को समाज के सबसे बड़े संकट के रूप में देख रहा है। लेकिन इसके बावजूद दलित



समाज का एक वर्ग ऐसा भी है जो मानता है की उक्त एलपीजी का प्रभाव दलित समाज पर बहुत परिवर्तनकारी रहा है। इसने दलित मुक्ति के नये द्वार खोलने में मदद की है। आम दलित जन-जीवन पर इसका सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। जबकि मुख्यधारा के विमर्श में सिर्फ उसके नकारात्मक प्रभावों पर ही चर्चा हो रही है। इन सबके बरक्स दलित विमर्श का स्वर यह भी है जो मानता है। दलित पूंजीवाद से दलित समाज की समृद्धि का रास्ता तैयार हो रहा है। उन्हें लगता है की बाजारवाद ही असली समाजवाद है। दूसरी किसी विचारधाराओं ने दलित समाज में इतना बदलाव नहीं लाया है जितना दलित पूंजीवाद ने लाया है। वे गर्व से यह मानते है की 'मनुवाद' से लड़ने के लिए 'मार्क्स' की वजाय 'मनी' का सहारा लेना अधिक बेहतर है। उनका एक स्लोगन है 'मर्सिडीज खरीदो, मनु भगाओ'। यह सब मान्यताएं दलित उद्यमियों की संस्था 'दलित इन्डियन चैम्बर ऑफ़ कामर्स एन इंडस्ट्री (डिक्की) की स्थापना एवं उसके राष्ट्रव्यापी उभार के साथ अधिक बलवती हुई है। 2005 में पुणे के एक दलित उद्यमी मिलिंद काम्बले द्वारा स्थापित इस संस्था डिक्की ने अबतक देश के मुख्यधारा के पूंजीवाद विरोधी स्वर के बरक्स एक नई स्थापना दी है। उक्त संस्था के संस्थापकों एवं उनसे जुड़े बुद्धिजिवियों ने अपने विभिन्न शोध निष्कर्षों से यह स्थापित किया है की बाजारवाद में ही दलित मुक्ति का स्वप्न निश्चित है। सामन्ती मूल्यों के खिलाफ बाजारवाद ही अधिक परिवर्तनकारी है। जातिवाद का दंश कम हुआ है। सामन्ती उत्पीड़न कम हुआ है। यद्यपि वह खत्म नहीं हुआ है। यह सब इसलिए हुआ है की उक्त दलित समाज के मध्य भी एक मध्यवर्ग विकसित हुआ है। उसके पास कुछ पूंजी आई है। जिसकी बदौलत उस समाज की निर्भरता गैर दलित समाज पर कम हुई है।

दूसरे सत्र का तीसरा प्रस्तुतीकरण दिल्ली विश्वविद्यालय की डॉ. आकांक्षा कुमार का था। 'रिडिस्ट्रीबूशन एण्डरेहेबिलिटेसन: द क्वेश्चन ऑफ लैंड एमंग दलित्स ऑफ पोस्ट पार्टिशन पंजाब' नामक अपनी प्रस्तुतिकरण में डॉ.आकांक्षा कुमार ने बँटवारे के बाद पंजाब में दलितों और उनकी बढ़ती आवाजों के बीच भूमि वितरण की कहानी को ऐतिहासिक रूप में प्रस्तुत किया। विभाजन के बाद पंजाब में आए दलित शरणार्थी परिवारों को जमीन का वितरण और उनकी पहचान अपने पेपर का मुख्य केंद्र बिन्दु बनाया। जैसा कि रोन्की राम और अन्य ने तर्क दिया है कि पंजाब में दलितों के बीच भूमि का सवाल अभी भी चिंता का विषय बना हुआ है। क्या उन्हें कई अन्य जातियों की तरह उनके नाम पर आवंटित भूमि मिली? इन शरणार्थियों को कैसे पुनर्स्थापित किया गया था? विभाजन पर पंजाब के ऊपर एक अति महत्वपूर्ण कार्य जुर्गेन्समेयर द्वारा किया गया जिसमें उनका कहना है कि विभाजन ने कई तरीकों से दलितों को प्रभावित

किया लेकिन उन्हें पंजाब के एक तरफ से दूसरी तरफ जाने की जरूरत नहीं थी, क्योंकि उनके अनुसार निचली जातियों ने खुद को प्रमुख धार्मिक समुदायों की धार्मिक पहचान में समायोजित कर दिया था उनके क्षेत्रों में से। पंजाब में चूहड़ा जातियों में से कई पंजाब के पश्चिमी हिस्से में ईसाई धर्म में परिवर्तित हो गए थे। जुर्गेन्समर का कहना है कि ये सभी समूह वहां रहे थे, क्योंकि वे उन धर्मों के साथ पहचाने गए थे, जैसे पूर्व में मज़बरी सिख और पश्चिम में मुस्लिम समुदाय के जुलाहा या मोची समुदाय। इन समुदायों का एक वर्ग ऐसा था जो दंगों, हिंसा और खतरों के सामान्य भय से पश्चिम पंजाब से पूर्व में चले गए थे। हालांकि, विभाजन पर हाल के अध्ययन अलग-अलग हैं और विभाजन के दौरान दलितों का सवाल इतिहासकारों और अन्य विद्वानों को इस समय गहराई से जोड़ रहा है।

संगोष्ठी के प्रथम दिन का तृतीय सत्र 'प्रेक्टिस, एक्सपीरियन्स एंड इम्पैक्ट ऑफ दलित मूवमेंट' सत्र अध्यक्षता और संचालन भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला के फ़ेलो श्री आशुतोष भारद्वाज द्वारा की गई। इस सत्र में तीन प्रस्तुतीकरण सम्पन्न हुए। प्रथम प्रस्तुतीकरण बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग में प्रोफेसर अर्चना कुमार ने 'कार्विंग आइडेंटिटी कार्विंग ट्रांसफ़ोरमेशन: ए केस स्टडी ऑफ़ रैदासिस फ़्रोम पंजाब' में संत रविदास, रविदासी आंदोलन और रविदासी समुदाय की महिलाओं की आकांक्षा, स्वप्नों और उनकी मुक्ति की इच्छा को इन महिलाओं के संघर्षमय जीवन अनुभवों के संदर्भ में देखने की कोशिश की। इसके साथ ही रविदासी पहचान के आधार पर हो रहे जातिविरोधी आंदोलन के फलस्वरूप विभिन्न प्रभावों को रविदासी समाज के साथ जोड़कर प्रस्तुत किया।

तृतीय सत्र का दूसरा प्रस्तुतीकरण दिल्ली विश्वविद्यालय की शोधार्थी कंचन शर्मा द्वारा 'मुसहर दलित आंदोलन में जगह की तलाश: चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ' विषय पर किया गया। उन्होंने उत्तर प्रदेश के मुसहर समुदाय के लोगों को प्रतिनिधित्व और उनकी समाज और दलित आंदोलन के अंदर उनकी विजिविलिटी और पीछे छूट जाने के कारणों की चर्चा करते हुए उन पर और अधिक शोध करने की जरूरत पर बल दिया। दलित आंदोलन मुख्यतः एक सामाजिक आंदोलन है, लेकिन वह अपने सारतत्त्व में रैडिकल राजनीति की नुमाइंदगी भी करता है। ऐसे आंदोलन से अपेक्षा की जाती है कि वह न केवल समाज में दलितों के बाह्य शोषण और वंचना की निर्मितियों के खिलाफ संघर्ष करेगा, बल्कि अपने आंतरिक दायरों में उनकी उपेक्षा और हाशियाकरण के पहलुओं के प्रति भी पूरी तरह से सचेत रहेगा। चुनावी राजनीति में उनकी शायद ही कहीं पूछ होती हो। उनकी स्थिति भी ऐसी नहीं है कि वे पहलकदमी ले कर आरक्षण के

प्रावधानों का लाभ उठाने की दावेदारी कर सकें। ऐसी स्थिति में उनके और उन जैसे अन्य दलित समुदायों के प्रति दलित आंदोलन में क्या जिम्मेदारी बनती है? उनकी इस प्रस्तुति में इस प्रश्न का एक उत्तर खोजने की भी कोशिश की गई।

संगोष्ठी के प्रथम दिन के तृतीय सत्र की अंतिम प्रस्तुति दिल्ली विश्वविद्यालय के डॉ. कमल नयन चौबे द्वारा "आदिवासी क्षेत्रों में दलित : वन संसाधन और जीविका की जद्दोजहद" पर की गई जिसमें उन्होंने जंगलों के भीतर खासकर आदिवासी बहुल क्षेत्रों में बसे टंगीया दलित समुदाय के कलंकीकरण, आदिवासी जीवन के भीतर टंगीया दलित समुदाय का बहिष्करण और उनके प्रतिनिधित्व की चर्चा की। अमूमन यह माना जाता है कि भारत के वन क्षेत्र आदिवासियों के निवास स्थान हैं, और हमारी संवैधानिक कानूनी संरचना में भी वनों पर निर्भर आदिवासी समूहों के हितों पर ही विशेष ध्यान ही नहीं बल्कि भारतीय संविधान द्वारा कुछ विषिष्ट क्षेत्रों में जनजातीय समुदायों के लिए खास प्रावधान किये गये हैं। इस संदर्भ में छठी अनुसूची और पाँचवी अनुसूची का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है। छठी अनुसूची में उत्तर-पूर्व राज्यों के आदिवासी समुदायों के लिए विशेष प्रावधान किये गये हैं। इन क्षेत्रों में स्वायत्त जिला परिषदों की व्यवस्था की गयी है, जिससे आदिवासी समुदायों को अपनी प्रथाओं के अनुरूप अपना जीवन व्यतीत करने और अपने संसाधनों का प्रबंधन करने की छूट मिलती है। वहीं, अनुसूची पाँच में शेष भारत के आदिवासी बहुल क्षेत्रों को सम्मिलित किया गया है, और इन क्षेत्रों में रहने वाले अनुसूचित जनजाति के व्यक्तियों के लिए विशेष प्रावधान किये गये हैं। पंचायत (अनुसूचित क्षेत्र विस्तार) अधिनियम या पेसा ने इन क्षेत्रों में अनुसूचित जनजातियों की स्थिति को और ज्यादा मजबूती प्रदान की है। बहरहाल, आम तौर पर यह माना जाता है कि पाँचवी और छठी अनुसूची के क्षेत्र या अन्य वन क्षेत्र आदिवासी बहुल हैं, लेकिन हकीकत यह भी है कि इन क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर दलित और अन्य समूह भी रहते हैं। इसलिए, वन अधिकार कानून 2006 को बनाने और पारित करवाने के लिए चलने वाले आंदोलन में इस बात पर लगातार बल दिया गया कि इसमें ऐसे प्रावधान सम्मिलित किया जाना चाहिए, जिससे अनुसूचित जनजातियों के अतिरिक्त वनों पर निर्भर अन्य समूहों को भी इस कानून के दायरे में लाया जा सके और उन्हें वन भूमि तथा वन संसाधनों पर अधिकार मिले। इसी के परिणामस्वरूप इस कानून में 'अन्य पारंपरिक वन-निवासी' श्रेणी को भी सम्मिलित किया गया, और यह कहा गया कि जो भी गैर-अनुसूचित जनजाति समूह तीन पीढ़ियों

और 75 सालों से एक स्थान पर रह रहे हों, या वन पर निर्भर हों, वे इस कानून के तथा वन अधिकारों के लिए योग्य होंगे।

अपने प्रस्तुतीकरण में डॉ.कमल नयन चौबे ने वनों में रहने वाले और अपनी जीविका और परिवेष के लिए वन संसाधनों पर निर्भर दलित समुदायों की स्थिति का ऐतिहासिक, कानूनी और अनुभवसिद्ध अध्ययन प्रस्तुत किया। इस संदर्भ में विशेष रूप से वनों और पाँचवीं अनुसूची के क्षेत्रों में कार्यरत कानूनी रूपरेखा की पड़ताल करते हुए इस प्रश्न पर विचार किया गया है कि क्या मौजूदा कानूनी संरचना वन संसाधनों पर दलितों को पर्याप्त अधिकार देती है? इस संदर्भ में वन-टांगिया गाँवों की स्थिति पर विशेष रूप से विचार किया गया है। ये वे गाँव हैं जिन्हें अंग्रेजों ने चलायमान गाँवों के रूप में स्थापित किया था, जिसमें भारत विभिन्न क्षेत्रों के गाँवों के मुख्य रूप से दलित जातियों के लोगों को जंगलों में बसाया गया। इनको बसाने के पीछे मुख्य लक्ष्य यह था कि जिन वनों की ज्यादा कटाई हो गयी है, वहाँ ये वनों को फिर से हरा-भरा कर दें। ये समूह एक स्थान पर दस-बारह साल रहते थे और उसके बाद दूसरे स्थानों पर चले जाते थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के कई दशकों के बाद भारत सरकार ने इस व्यवस्था को खत्म कर दिया। उस समय जो टांगिया गाँव जहाँ थे, वही स्थायी रूप से बस गये, किन्तु उनके गाँव को मान्यता नहीं दी गयी। अपनी प्रस्तुती डॉ.कमल नयन चौबे ने ऐसे ही गाँव और उसमें बसे दलितों के वन संसाधनों के अधिकारों का विश्लेषण किया है।

संगोष्ठी का दूसरा दिन भी विचारपूर्ण और बहसतलब रहा।

संगोष्ठी के दूसरे दिन के चतुर्थ सत्र 'द एक्सपीरियन्स ऑफ जस्टिस एण्ड इमेन्सिपेशन' की अध्यक्षता और संचालन भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान के पूर्व फेलो एवं जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय समाजशास्त्र के प्रोफेसर आनंद कुमार द्वारा की गई। इस सत्र में तीन प्रस्तुतीकरण सम्पन्न हुए। प्रथम प्रस्तुतीकरण राजनेता एवं पूर्व केंद्रीय मंत्री, पटना विश्वविद्यालय में राजनीति विज्ञान के प्रोफेसर संजय पासवान का था जिसका शीर्षक था 'सोशल एकूईलिब्रिएम वाया सोशल जस्टिस एण्ड सोशल कोहेजन'। अपने सार्वजनिक जीवन के अनुभवों को साझा करते हुए उन्होंने कहा कि एक सीमा तक राजनीतिक-सामाजिक जीवन में प्रतिनिधित्व हासिल करने के बाद भी दलित समूहों से जुड़े लोग कई प्रकार से बहिष्कृत किए जाते हैं।

चतुर्थ सत्र का दूसरा प्रस्तुतीकरण जी.बी.पंत सामाजिक विज्ञान संस्थान इलाहाबाद में समाज विज्ञान की सहायक प्राध्यापक डॉ. अर्चना सिंह ने '(अन)रिवेल्ड स्टोरीज मैपिंग द पॉलिटिकल सब्जेक्टिविटी ऑफ

रुल दलित वुमेन' शीर्षक से किया। दलित महिलाओं के जीवन प्रसंगों को रेखांकित करते हुए उन्होंने कहा कि किस प्रकार दलित महिलाएँ सवर्ण पुरुषवाद और सत्ता को किनारे हटाते हुए अपनी बात रख रही हैं। और भारतीय ग्रामीण सत्ता संरचना को बदल रही हैं।

चतुर्थ सत्र का तृतीय प्रस्तुतीकरण सावित्रीबाई फूले विश्वविद्यालय पुणे में स्त्री अध्ययन विभाग में शोधरत देबस्मिता देब द्वारा "रीडिंग ए बंगाली दलित विमेन्स लाइफ नरेटिव" विषय पर किया गया जिसमें उन्होंने बंगाल के दलित आंदोलन के संक्षिप्त परिचय के बाद दलित महिलाओं की आत्मकथाओं को समाजशास्त्र और साहित्य की सैद्धांतिकी में देखने पर बल दिया। साथ ही साथ उन्होंने अपनी प्रस्तुति में यह रेखांकित किया कि यह दलित आत्मकथाएँ हमारी समझ को अनुभव और बहिष्करण के स्तर को विस्तृत करती हैं।

संगोष्ठी के दूसरे दिन, पांचवें सत्र 'दलित मूवमेंट इन नॉर्थ इंडिया इन कल्चर' की अध्यक्षता और संचालन भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान की फेलो डॉ. देबजानी हलधर द्वारा की गयी। इस सत्र में तीन प्रस्तुतीकरण सम्पन्न हुए। प्रथम प्रस्तुतीकरण एफ.टी.टी.आई. में फिल्म और मीडिया अध्ययन के प्रोफेसर एम.के. राघवेन्द्र ने 'रिप्रेजेंटिंग द दलित एक्सपीरियंस इन इंडियन फिल्म' नाम से किया, इसमें फिल्मों द्वारा समाज की सच्चाइयों से रूबरू होने के तरीकों, प्रविधियों की चर्चा की गयी। इसके साथ ही फिल्मों में दलित प्रतिनिधित्व और फिल्मों में दलित मुद्दों के ऊपर हो रहे कार्यों पर बात की गयी।

पांचवें सत्र का दूसरा प्रस्तुतीकरण इलाहाबाद विश्वविद्यालय के शोध छात्र अंकित पाठक ने नवउदारीकरण के दौर में "दलित भागीदारी, सम्मान और गरिमा के प्रश्न : आरक्षण फिल्म का विशेष संदर्भ" के नाम से किया। आरक्षण फिल्म को देखने वाले विभिन्न सामाजिक समूहों के युवाओं की प्रतिक्रिया के आधार पर आरक्षण, प्रतिनिधित्व और उच्च शिक्षा जगत में सामाजिक न्याय के सवाल पर यह प्रस्तुतीकरण केन्द्रित था। अंकित पाठक ने कहा कि हमारे समय में 'आरक्षण' के खिलाफ एक विमर्श नए तरीके से उठ खड़ा हुआ है। इससे सांस्कृतिक अभिव्यक्तियाँ भी अछूती नहीं हैं। प्रकाश झा की फिल्म 'आरक्षण' में इस विमर्श को पॉपुलर तरीके से अभिव्यक्त किया गया है। यह फिल्म भारत के सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों में दलितों की भागीदारी के सवाल, सम्मान की आकांक्षा, पूँजीवादी असमान शिक्षा प्रणाली, कोचिंग कल्चर, शिक्षा के निजीकरण के मुद्दे को उठाने के साथ दलित जीवन-बोध को दर्शक के सामने रखती है। इस फिल्म को एक समाजशास्त्रीय और राजनैतिक पाठ के रूप में देखे जाने की जरूरत है।

पांचवें सत्र की अंतिम प्रस्तुति भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान के पूर्व फेलो डॉ.रत्नाकर त्रिपाठी की रही। इसका शीर्षक था – ‘ब्रिंगिंग द मार्जिन टू द सेंटर : दलित ऑटो बायोग्राफीज एंड दलित्स इन द मीडिया’। उनका मानना था कि दलित आत्मकथाएं दलित आंदोलन की साहित्यिक अभिव्यक्ति रही हैं। जिसके माध्यम से दलित लेखकों ने समाज की सच्चाई को अपनी आत्मकथाओं में जाहिर किया है।

संगोष्ठी के दूसरे दिन छठवें सत्र ‘कैंपस एण्ड सोसाइटी’ की अध्यक्षता और संचालन जी.बी. पंत समाज विज्ञान संस्थान, इलाहाबाद के निदेशक एवं समाज विज्ञानी प्रोफेसर बद्री नारायण ने की। इस सत्र में तीन प्रस्तुतीकरण सम्पन्न हुए। इस सत्र का प्रथम प्रस्तुतीकरण भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान के फेलो डॉ.सतेन्द्र कुमार ने ‘इमरजेंस ऑफ द भीम आर्मी: यूथ क्लास एंड पॉलिटिक्स इन वेस्टर्न उत्तर प्रदेश’ नाम से किया। उन्होंने पश्चिमी उत्तर प्रदेश में भीम आर्मी की परिघटना और इस आंदोलन के विभिन्न पहलुओं को समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में देखा। सतेन्द्र कुमार ने अपने प्रस्तुतीकरण के माध्यम से भीम आर्मी के आंदोलन की सामाजिक गतिकी को समझने का प्रयास किया जिससे समकालीन भारत में उभर रहे छात्रों, युवाओं के आंदोलनों के साथ ही साथ नव-सामाजिक आंदोलनों की सामाजिक-राजनीतिक गतिशीलता को समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से समझा और जाना जा सके। छठवें सत्र का दूसरा प्रस्तुतीकरण जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के शोध छात्र प्रवीण कुमार थालापल्ली द्वारा ‘एजीटेशन एज एजुकेशन वायलेंस: ए केस स्टडी ऑफ भीम आर्मी’ विषय पर किया गया। जिसमें पश्चिमी उत्तर प्रदेश में भीम आर्मी की परिघटना और उसके आंदोलन के वैचारिक स्रोतों के साथ ही साथ देश भर के विभिन्न विश्वविद्यालयों में दलित-बहुजन छात्रों के आंदोलन एवं उसकी दलित आंदोलन के साथ सहधर्मिता की बात प्रवीण ने अपने प्रस्तुतीकरण में कही। इसके साथ ही उन्होंने भीम आर्मी के नेतृत्व एवं भीम आर्मी के आंदोलन का दलित शिक्षित युवाओं पर प्रभाव और सहभागिता के संदर्भों को अपने प्रस्तुतीकरण के माध्यम से साझा किया।

जार्ज वाशिंगटन विश्वविद्यालय, अमेरिका में समाजशास्त्र पढ़ा रहे डॉ. गौरव जे. पठानिया ने ‘द चेंजिंग इपीस्टेमोलोजी ऑफ दलित-ओबीसी स्टूडेंट पॉलिटिक्स इन इंडिया’ में भारत के विश्वविद्यालयों में चल रहे दलित और पिछड़े वर्गों के छात्र आंदोलन के विकास, उससे हासिल वैचारिक चुनौतियों और कठिनाइयों को प्रस्तुत किया। उन्होंने रेखांकित किया कि विश्वविद्यालय की राजनीति के इतिहास में पहली बार, हाशिये के छात्र भारतीय संस्कृति, परंपरा और धर्म पर महत्वपूर्ण प्रश्न उठाने में अग्रणी हो रहे हैं। उन्होंने वामपंथी और दक्षिणपंथी विचारधाराओं से इतर बहुजन, दलित और पिछड़े वर्गों के लिए एक अलग वैचारिक राह चुनी है यानी दलित-और पिछड़े समुदायों के छात्रों ने अपनी विचारधाराओं को बदल दिया

है। हाल ही में यह भी देखने में आ रहा है कि पहचान की राजनीति से अब प्रतिरोध की राजनीति में विकसित हो रही है।

दूसरे दिन के अंतिम एवं सातवें सत्र 'रीजनल पर्सपेक्टिव : उत्तर प्रदेश एण्ड बिहार' की अध्यक्षता जी.बी. पंत समाज विज्ञान संस्थान, इलाहाबाद की समाज विज्ञानी डॉ. अर्चना सिंह द्वारा की गई। इस सत्र में चार प्रस्तुतीकरण सम्पन्न हुए। इस सत्र का प्रथम प्रस्तुतीकरण बिहार के सामाजिक कार्यकर्ता डॉ. फैजान अहमद द्वारा 'पसमांदा पॉलिटिक्स अमंग मुस्लिम्स ऑफ नॉर्थ इंडिया : प्रोमिसेस एंड लिमिटेशन्स' विषय पर की गयी। जिसमें पसमांदा आंदोलन के उदय के विभिन्न प्रश्नों को एवं इस आंदोलन के बाद दलित मुस्लिमों की राजनीति के उदय की बनती बिगड़ती राजनीति को डॉ. फैजान अहमद ने अपने प्रस्तुतीकरण में प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा कि भारत में अनुसूचित जातियों की तरह दस्तकार दलित मुस्लिम समुदायों की स्थिति काफी सोचनीय है। उन्हें आर्थिक सामाजिक राजनीतिक क्षेत्रों में उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिल पाया है। इसलिए इन क्षेत्रों में वे बहिष्करण का शिकार हैं। पसमांदा दलित मुस्लिमों पर शोध किए बिना, उनकी कठिनाइयों को जाने बिना एक समतापूर्ण समाज बनाना मुश्किल होगा।

इसी सत्र का दूसरा प्रस्तुतीकरण जी.बी. पंत समाज विज्ञान संस्थान, इलाहाबाद के शोध छात्र जितेंद्र सिंह द्वारा 'बेआवाज़ी से दावेदारी की ओर : उत्तर प्रदेश के बुंदेलखंड क्षेत्र की विभिन्न दलित जातियों का जीवन सन्दर्भ' विषय पर किया गया। इसमें बुंदेलखंड के उन दलितों की कहानी को साझा किया गया जो अभी तक बेआवाज़ी और बेदखली के दायरे में थे। जितेंद्र ने यह भी बताया कि दलित आंदोलन में वह दलित समुदाय जो संख्या में कम हैं और अपनी आवाज को सही ढंग से मुख्यधारा के विमर्श में नहीं रख पाते हैं। वह समुदाय अभी तक दलित आंदोलन की चिंताओं में शामिल नहीं हैं। अपने इस प्रस्तुतीकरण में जितेंद्र ने कहा कि डा. अम्बेडकर की अगुवाई में उभरे संवैधानिक और संसदीय आंदोलन ने कुछ हद तक दलितों को उनके हक राजनीतिक भागीदारी और मोलतोल की प्रक्रिया से मुहैया कराए हैं। आजादी के बाद शिक्षा व आरक्षण ने अस्तित्व के लिए उनकी लड़ाई को कुछ आसान किया है लेकिन सम्पूर्ण दलित समाज को समानता के लक्ष्य के लिए अभी बहुत संघर्ष करना है। आज दलित आन्दोलन ने उत्तर भारत के कुछ क्षेत्रों में दृश्यमानता हासिल की है लेकिन कुछ क्षेत्र अनछुए रह गये हैं। बुंदेलखंड क्षेत्र में दलित आन्दोलन उतनी मजबूती के साथ नहीं उभर सका जितना कि उत्तर प्रदेश के अन्य इलाकों में। इसके साथ ही साथ इस इलाके के दलित आंदोलन और उसकी सामाजिकी पर अध्ययन न के बराबर हुए हैं। इस इलाके में दो बड़े बौद्ध सम्मलेन 1974 व 1975 में हुए जो दलित अकादमिक विमर्शों में अनुपस्थित ही रहे। इन सम्मेलनों में जिन

दलित जातियों ने आगे आकर शोषण के विरुद्ध आवाज उठाई, आज वे दलित जातियाँ अपेक्षाकृत राजनीतिक दृष्टि से मुखर हैं। इसी के साथ कई अन्य दलित जातियाँ अदृश्य और मूक हैं। वे अपनी अस्मिता की लड़ाई दलित जातियों के अंदर और अन्य प्रभुत्वशाली जातियों से लड़ रही हैं। ये कमजोर दलित जातियाँ मुख्यधारा की राजनीति में अपनी पहचान बनाने के लिए संघर्षरत हैं। वर्तमान समय में बुंदेलखंड में महादलित परिसंघ के अंतर्गत ऐसी कई कमजोर दलित जातियाँ लामबंद हो रही हैं। जितेंद्र ने यह भी देखने की कोशिश की कि एक विषय के रूप में समाजशास्त्र की चिंता से ऐसी जातियों को क्यों उपेक्षित हो जाना पड़ा है। कहीं ऐसा तो नहीं है कि राजनीति से जैसा समाज बनता है, वैसे ही समाज का अध्ययन समाजशास्त्र करने लगता है और कई अन्य जातियाँ इससे ओझल हो जाती हैं।

दूसरे दिन के सातवें सत्र का तीसरा प्रस्तुतीकरण भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान के फेलो डॉ.रमाशंकर सिंह ने 'पराजय और लोकतंत्र की विजय : उत्तर प्रदेश के उपेक्षित दलित समुदाय और राजनीति का निर्माण' विषय पर किया। इसमें उन्होंने वाराणसी, लखनऊ और इलाहाबाद के धरकार समुदाय के बीच उभर रहे आंदोलन की बात की। इस आंदोलन से इन समुदायों के बीच से महिला और युवा नेत्रत्व भी विकसित हो रहा है, जो मुख्य धारा के दलित आंदोलन में अभी तक जगह नहीं बना पाये थे। अब यह समुदाय लोकतंत्र की पहली सीढ़ी तक पहुँच रहे हैं यानी अपनी बात को सुना रहे हैं। यह सुनाना ही उनकी पहली सफलता है।

दूसरे दिन के सातवें सत्र का अंतिम प्रस्तुतीकरण संगोष्ठी के संयोजक और भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान के फेलो डॉ.अजय कुमार ने 'उत्तर भारत में समकालीन दलित आंदोलन: सिद्धांत, व्यवहार एवं चुनौतियाँ' विषय पर अपना पर्चा प्रस्तुत करते हुए कहा कि उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दियाँ मानव मुक्ति की शताब्दियाँ रही हैं, विशेषकर दक्षिण एशिया में बहिष्कृत, कलंकित और अपवंचित किए गए दलित समुदायों के लिए। समाज सुधारकों और दलित नेताओं ने महाराष्ट्र, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, केरल, गुजरात, पंजाब, बंगाल और उत्तर प्रदेश के एक बड़े हिस्से में मुक्ति और समानता के दलित प्रश्न को हाशिये से बाहर कर मुख्यधारा की राजनीति का एक केंद्रीय प्रश्न बना दिया। वास्तव में समकालीन दलित नेतृत्व ने राजनीतिक शक्ति हासिल करके सामाजिक बदलाव हासिल करने की कोशिश की है। इस प्रक्रिया की पड़ताल बताती है कि दलितों ने आधुनिक समय में लोकतांत्रिक व्यवस्था में आस्था प्रकट की और गोलबंद



होकर पीड़ा, अन्याय और हाशियाकरण के अनुभवों को राजनीतिक ताकत में बदलने का प्रयास किया है। इसके द्वारा दलित समुदायों को प्रतिनिधित्व, सत्ता, दृश्यात्मकता और मोलभाव की क्षमता हासिल हुई है।

संगोष्ठी के तीसरे यानि अंतिम दिन आठवें सत्र की शुरुआत एक विशेष व्याख्यान से हुई। यह विशेष व्याख्यान भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान के पूर्व फेलो एवं जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय समाजशास्त्र के प्रोफेसर आनंद कुमार द्वारा 'द सोशलिस्ट कंट्रीब्यूशन इन द दलित मूवमेंट इन नॉर्थ इंडिया' विषय पर दिया गया। इस विशेष व्याख्यान की अध्यक्षता भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान के फेलो प्रोफेसर मुंडोली वी. नारायणन द्वारा की गई। इस व्याख्यान में प्रोफेसर आनंद कुमार ने जाति और समाज के बारे में आचार्य नरेंद्र देव और राम मनोहर लोहिया का हवाला देते हुए कहा कि स्वतंत्र भारत में 80 प्रतिशत के करीब जनता की सामाजिक-सांस्कृतिक आवाज को लोहिया ने महत्व दिया और 1956 में उन्होंने बाबासाहेब अंबेडकर से इसके लिए बात की थी किस प्रकार समाजवादी आन्दोलन को दलित आंदोलन से जोड़कर एक बेहतर भारत बनाया जाये। इसी बीच बाबासाहेब अंबेडकर की असमय परिनिर्वाण ने इस मुक्तिकामी परियोजना को बीच में ही रोक दिया।

इसके साथ ही साथ उन्होंने यह भी कहा कि हमारे राष्ट्रनिर्माताओं ने यह सपना देखा था कि करुणा की शक्ति से समाज बदलेगा। अंबेडकर का सपना था कि आजादी के बाद आजाद भारत में कानून का राज शुरू होगा। लेकिन कलह का युग आ गया। मंदिर से लेकर आरक्षण तक की लड़ाई शुरू हो गयी, ये लड़ाई राजनीति से शुरू होकर समाज तक पहुँच गई। फिर जाति का सवाल उभर कर आया, समाज में एक संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो गई, इस जाति के सवाल ने पहचान के आधार पर कुछ समूहों को सामाजिक चेतना के माध्यम से राजनीतिक विमर्श और राजनीति में उनको जगह दिलाने का काम किया।

संगोष्ठी के तीसरे यानि अंतिम दिन 'महात्मा गांधी एंड अंबेडकर' नामक नवें सत्र की अध्यक्षता प्रोफेसर आनंद कुमार द्वारा की गई। इस सत्र में दो प्रस्तुतीकरण सम्पन्न हुए। इस सत्र का प्रथम प्रस्तुतीकरण इतिहासकार और गांधीवादी विद्यान विकासशील समाज अध्ययन पीठ, नई दिल्ली के डा. निशिकांत कोलगे द्वारा 'व्हाट द कोण्टेंपोरारी दलित मूवमेंट कैन लर्न फॉर गांधी-अंबेडकर डिबेट' विषय पर किया गया। इसमें उन्होंने गांधी और अंबेडकर के जाति व्यवस्था, अंतरजातीय विवाह, अंतरजातीय भोज पर चर्चा की। उन्होंने कहा कि यह गांधी ही थे जिन्होंने इन मुद्दों पर लोगों का ध्यान वैचारिक – विमर्श में दिलाया और अंबेडकर के साथ मिलकर अशुभ्यता जैसे मुद्दे पर व्यापक सफलता प्राप्त की। उन्होंने कहा कि इन दोनों

महापुरुषों ने राज्य समाज को बदलने की प्रेरणा दी जिसमें वे पूरी तरह से तो नहीं, लेकिन काफी सीमा तक सफल रहे।

संगोष्ठी के तीसरे दिन नवे सत्र का दूसरा प्रस्तुतीकरण सिक्किम यूनिवर्सिटी गंगटोक के इतिहास विभाग के शोध छात्र बिप्लव कुमार द्वारा 'डेमोक्रेटिक इंडिया'ज ट्राइस्ट विथ दलित मूवमेंट'स: आइकोनाईजेशन ऑफ अंबेडकर एंड गाँधी एंड सोशल जस्टिस' विषय पर किया गया। इसमें उन्होंने अंबेडकर और गांधी को एक आइकॉन के रूप में तब्दील किए जाने के इतिहास पर प्रकाश डालते हुए कहा कि सामाजिक न्याय के लिए अंबेडकर की प्रतिमाओं ने प्रेरणास्रोत का काम किया है, विशेषकर ग्रामीण इलाकों में। अंबेडकर की मूर्तियों ने खासकर दलित शिक्षित युवाओं में एक नई ऊर्जा का संचार किया है। अंबेडकर के हाथ में संविधान की किताब लिए खड़ी मूर्तियाँ दलित युवाओं के बीच संविधानवाद को बढ़ाती हैं। इस तरह से यह अंबेडकर की यह मूर्तियाँ दलितों को पढ़ने-लिखने की भी प्रेरणा देती हैं। इस तरह से अपने इस प्रस्तुतीकरण में बिप्लव ने जिस खतरे की बात की वह यह है कि कही कि गांधी और अंबेडकर को सिर्फ मूर्तियों की राजनीति तक सीमित न कर दिया जाये। कही ये दोनों शाशक वर्गों की मूर्तिकरण की राजनीति का शिकार न हो जाएं। कहीं ऐसा न हो कि जिसमें इन दोनों के विचार इनकी मूर्तियों के नीचे दब जाएं।

इस तीन दिवसीय संगोष्ठी के दसवें सत्र में संगोष्ठी का समापन भाषण जी.बी. पंत समाज विज्ञान संस्थान, इलाहाबाद के निदेशक एवं समाज विज्ञानी प्रोफेसर बन्नी नारायण द्वारा 'रिफार्म्युलेटिंग द फॉर्म एंड कंटेंट ऑफ दलित-बहुजन मूवमेंट इन नॉर्थ इंडिया' द्वारा दिया गया जिसमें उन्होंने कहा कि दलित आंदोलन को समझने के लिए केवल अंबेडकर ही पर्याप्त नहीं हैं बल्कि उत्तर भारत में स्वामी अछूतानन्द और पेरियार ललई सिंह यादव, चन्द्रिका प्रसाद जिज्ञासु भी आवश्यक हैं। इसके साथ ही साथ उनके ही जैसे हजारों स्थानीय दलित नेताओं ने दलित आंदोलन को इस मुकाम पर पहुंचाया। जाति के सवाल पर अंबेडकर और कांशीराम के विचारों का मूल्यांकन करते हुए यह भी देखना होगा कि कांशीराम ने किस प्रकार दलित जातियों को समाज में छिपी हुई चुनावी और राजनीतिक सत्ता से जोड़ पाने में सफलता प्राप्त की जिससे मायावती उत्तर प्रदेश की कई बार मुख्यमंत्री बन सकीं। उन्होंने छोटे-छोटे कस्बों में दलित महापुरुषों की उन जीवनियों की ओर ध्यान दिलाया जो बेनाम दलित सामाजिक-राजनीतिक, सांस्कृतिक कार्यकर्ता अपने अनुभवों से लिख रहे हैं। इनका मूल्यांकन किसी भी तरह से मुख्यधारा की दलित आत्मकथाओं से कम नहीं है।

डॉ. अजय कुमार

फेलो, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान,

राष्ट्रपति निवास शिमला-171005

मोबाइल : 09415159762, 9838205100

ईमेल : [iiasajayk@gmail.com](mailto:iiasajayk@gmail.com)